

इक्का ! ताँगा ! मोटर !

डा० एस० पी० खत्री

लोक-शिक्षण-पुस्तक-माला, संख्या–३

प्रकाशक और विक्रेता

भारती-भण्डार

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण

सं० २०१४ वि०

मूल्य ३.००

मुद्रक

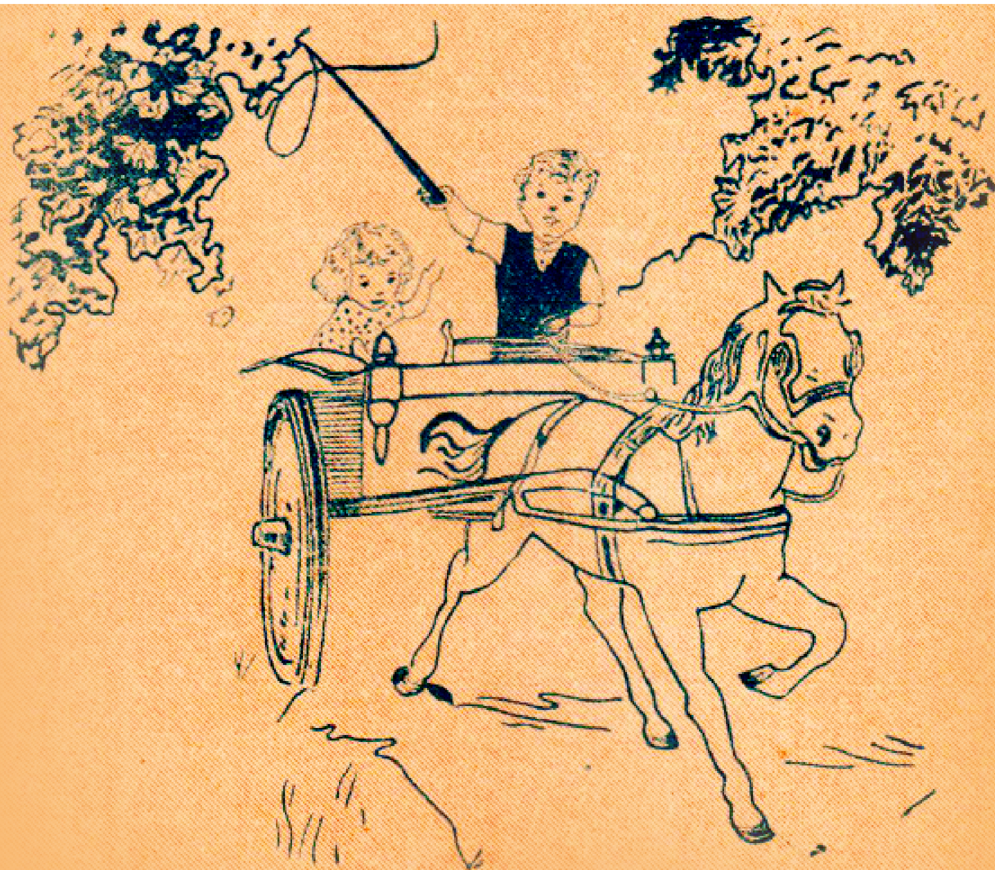
चन्द्रप्रकाश ऐरन

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

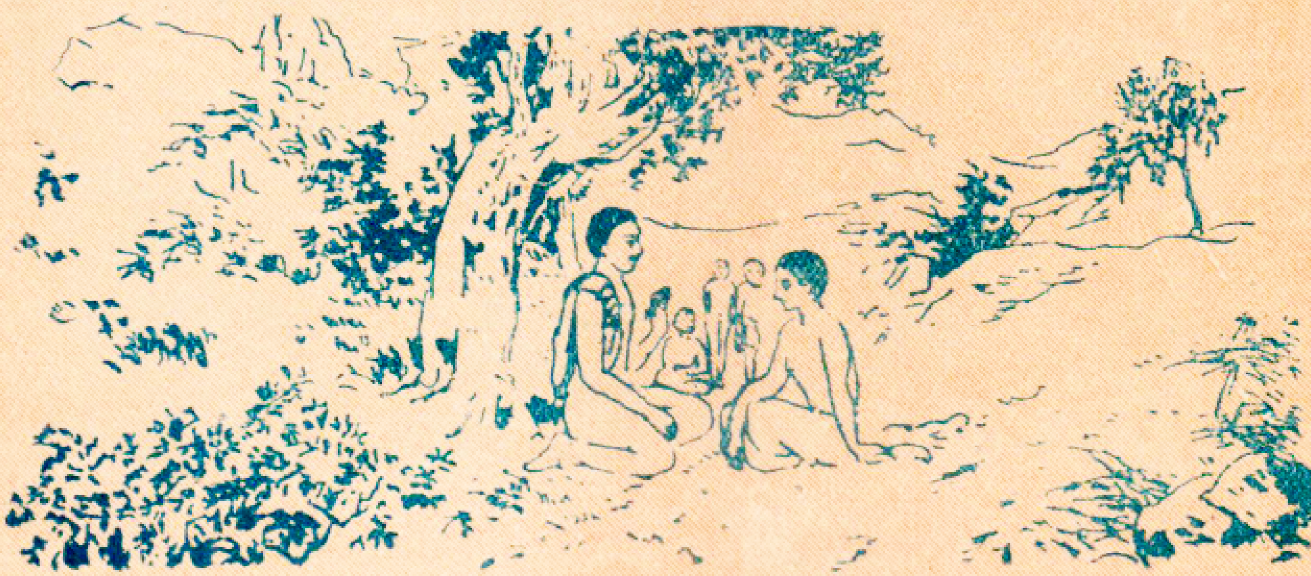
दो शब्द

बालकों के लिए पुराण, इतिहास आदि की कहानियों और लोक-कथाओं को लेकर हमारे यहाँ से अनेक विद्वानों की लिखी सुन्दर पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इधर हमने लोक-शिक्षण-सम्बन्धी सुन्दर सचित्र पुस्तकें प्रकाशित करने का विचार किया है। उसी के अन्तर्गत डॉ० एस० पी० खत्री ने कुछ सुन्दर पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें हमारे जल, थल, आकाश और विश्व के आदिम विकास पर बहुत ही सरस पद्य-बद्ध पुस्तकें हैं। 'इक्का! ताँगा! मोटर!' उन्हीं में से एक है। विश्वास है कि बालकों और प्रौढ़ों के लिए यह लोक-शिक्षण-माला बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।

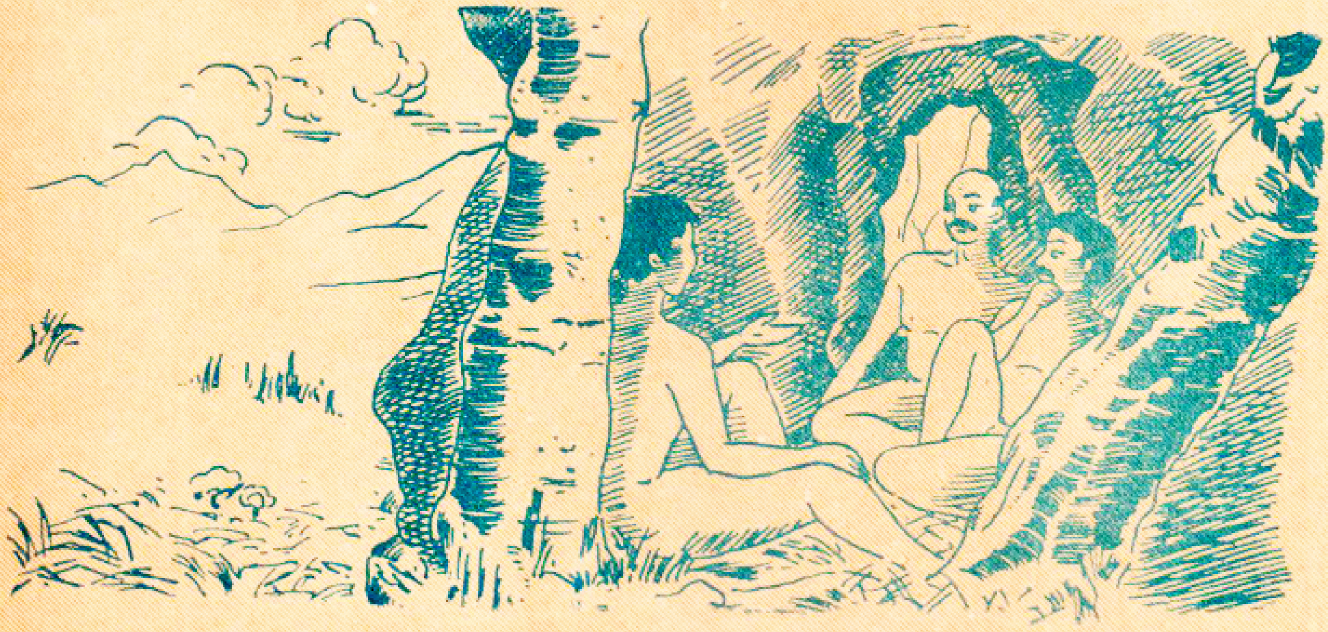
—प्रकाशक



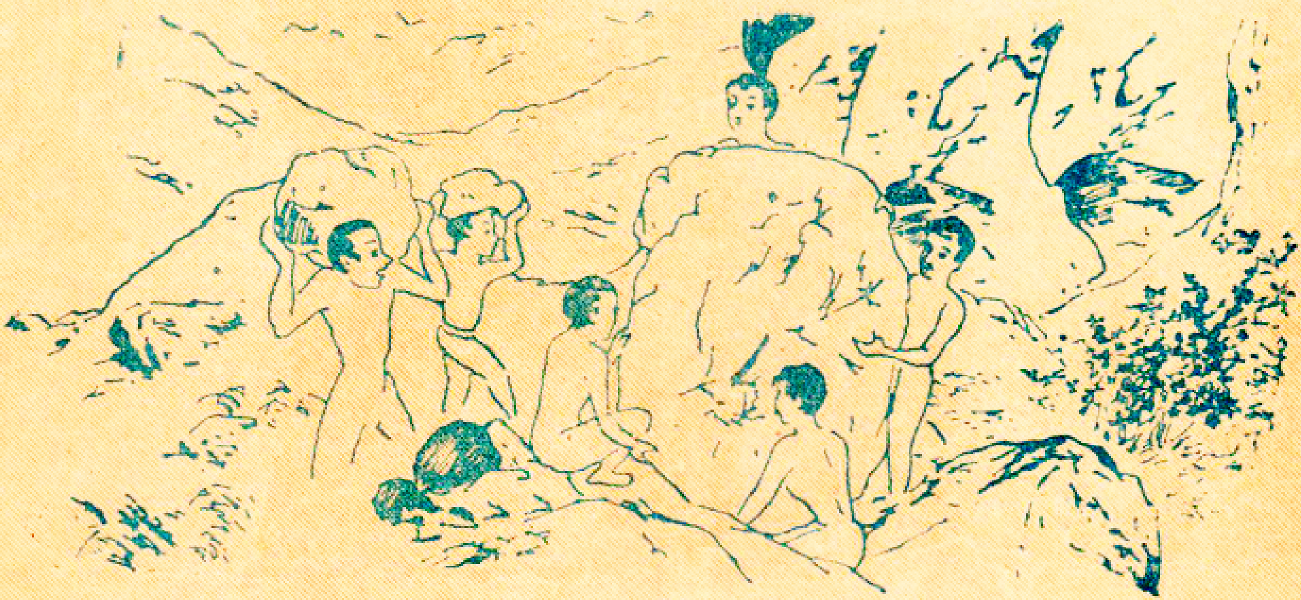
इक्का ! ताँगा ! मोटर !



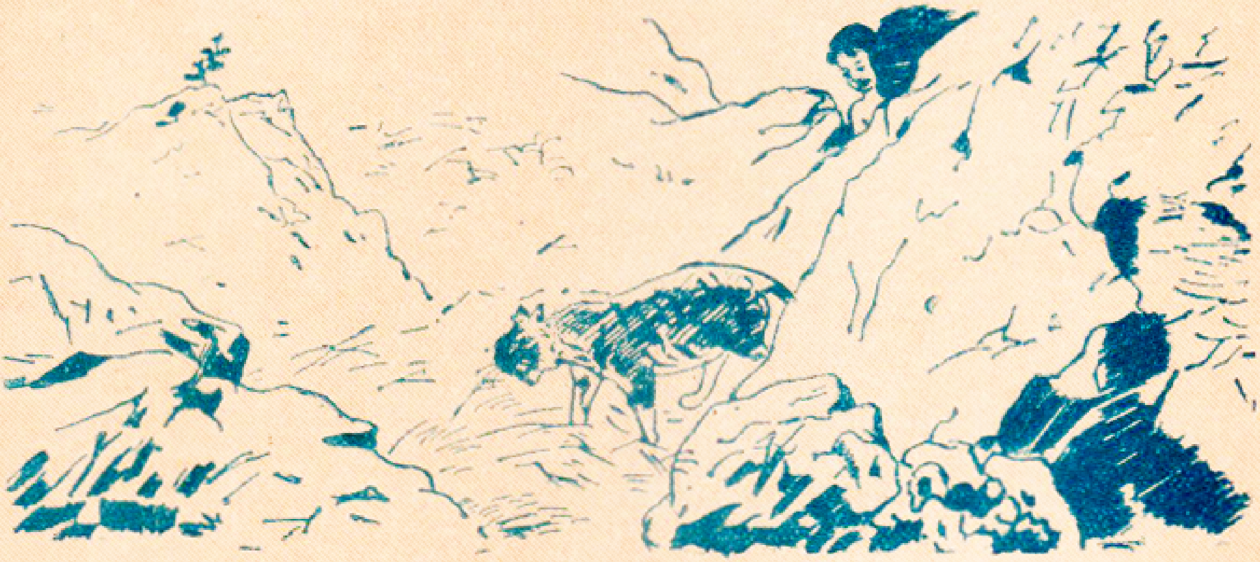
आओ भैया तुम्हें सुनायें,
सुन्दर एक कहानी।
मगर नहीं राजा रानी की,
पर है बहुत पुरानी।



जंगल और पहाड़ों पर ही,
पुरखे बसे हमारे,
करते थे शिकार मन माना,
थे बिलकुल बंजारे।



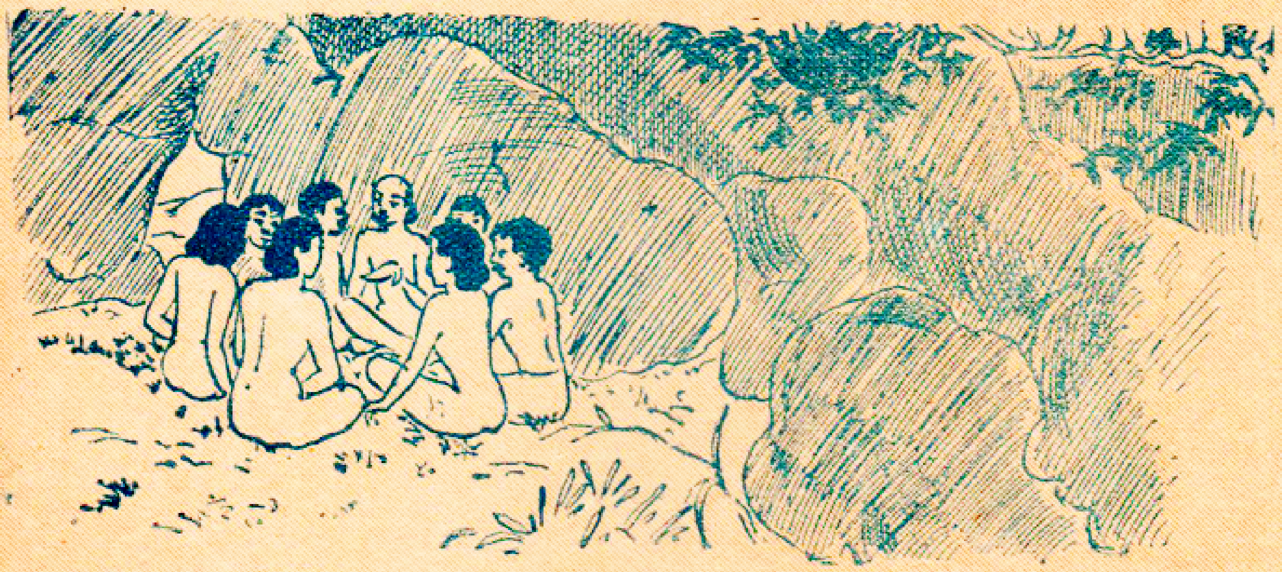
पत्थर ऊपर - नीचे रखकर,
छोटी गुफा बनाते,
बहुत बड़े पत्थर को लेकर,
फाटक एक लगाते।



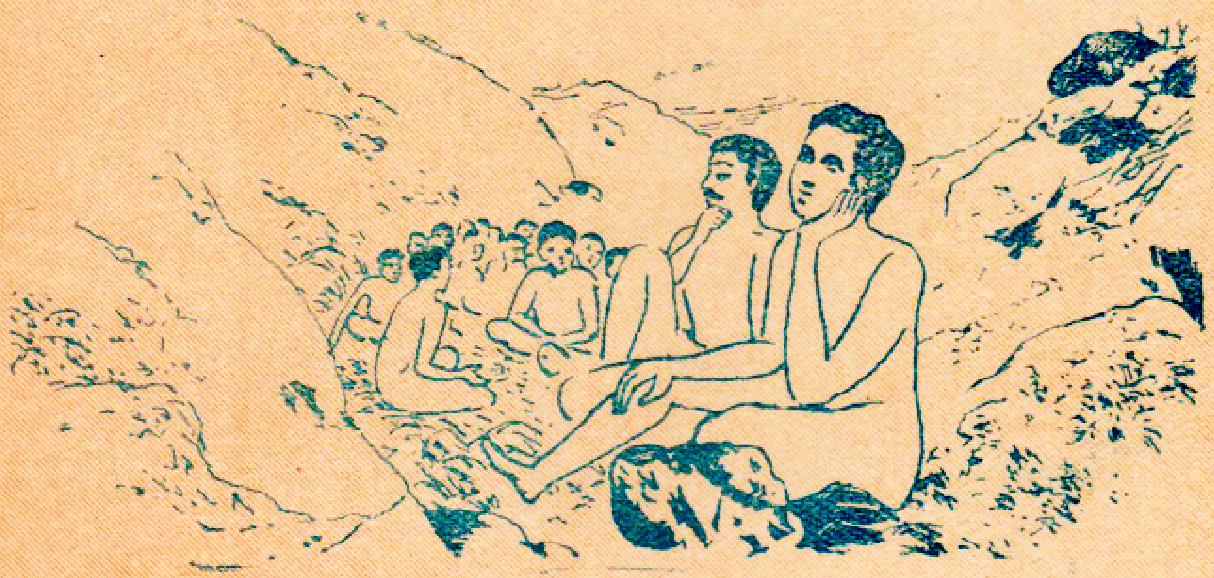
शेर, बबर थे घूमा करते,
इससे डर था भारी,
जहाँ शाम होने लगती थी,
सो जाते नर-नारी



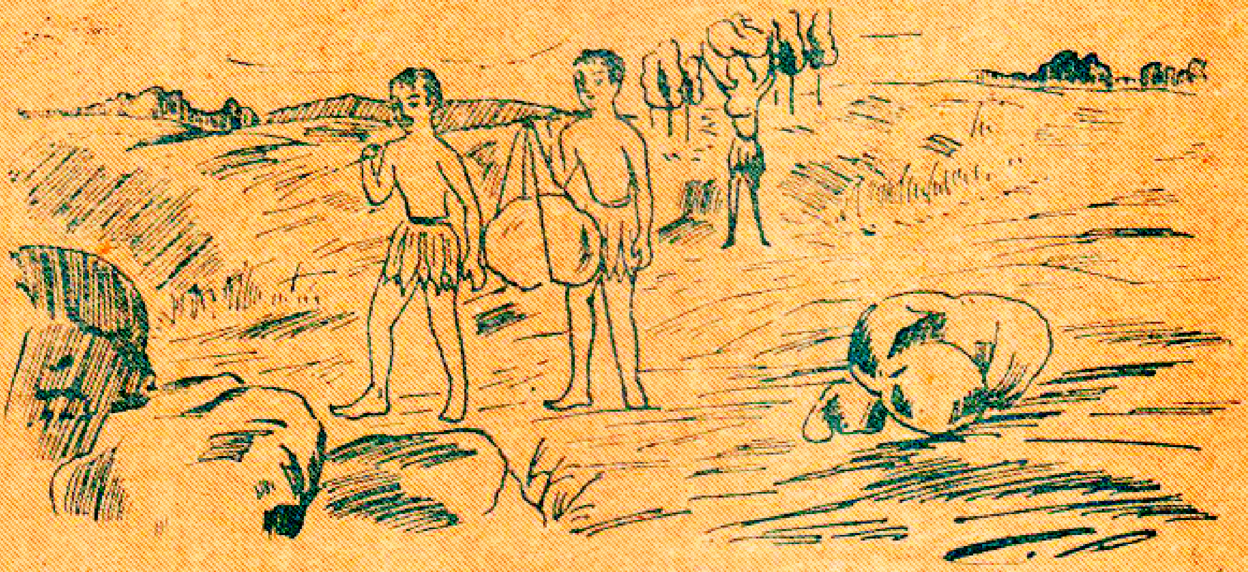
घूमा करते थे शिकार की,
टोह लगाते फिरते।
मछली, हिरन, अनेक जानवर
के बल पर वे जीते।



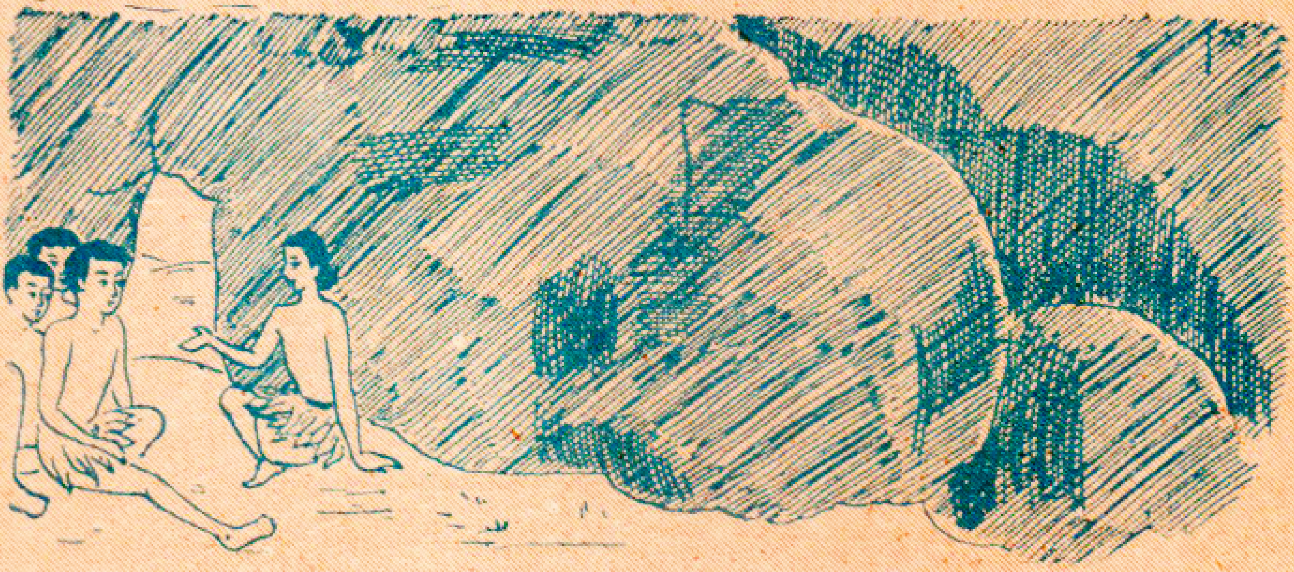
रहने को घर-द्वार नहीं था,
कहीं न कपड़े-लत्ते।
गोल बाँध सब रहते सहते,
ज्यों मक्खी के छत्ते।



बुद्धि हमारे पुरखों में,
जब धीरे-धीरे आई।
लगे सोचने और समझने,
सब मिल भाई-भाई।



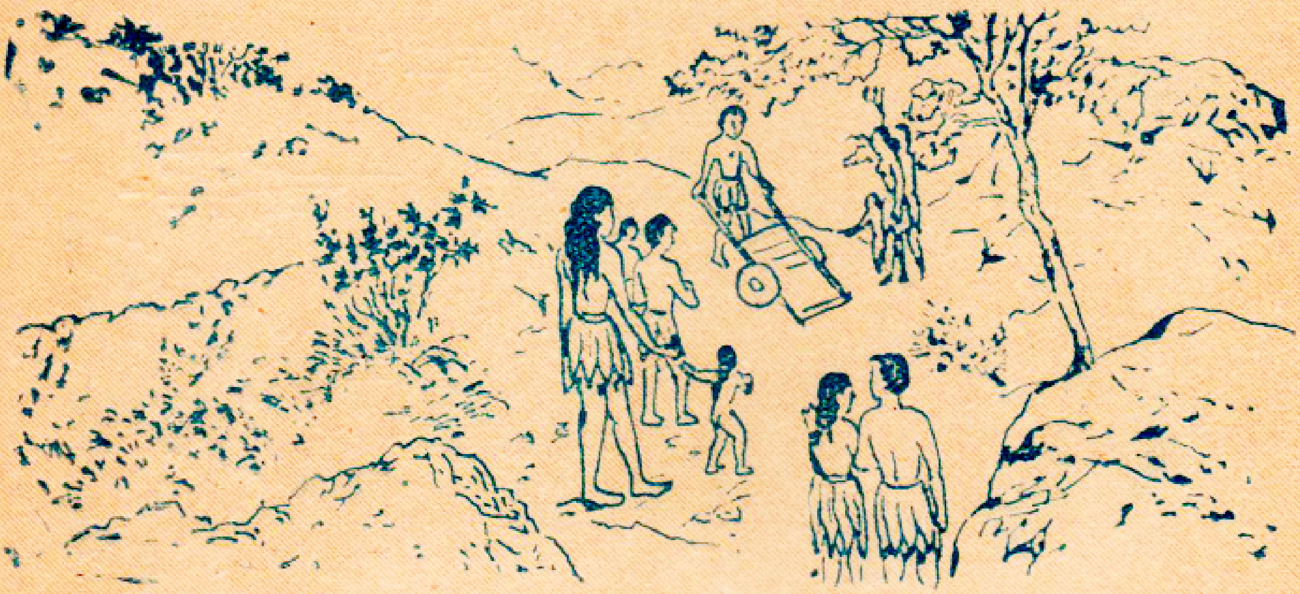
दूर - दूर से पत्थर लाना,
दू र - दू र से खा ना।
दूर - दूर का आना - जाना,
सब का था मन माना।



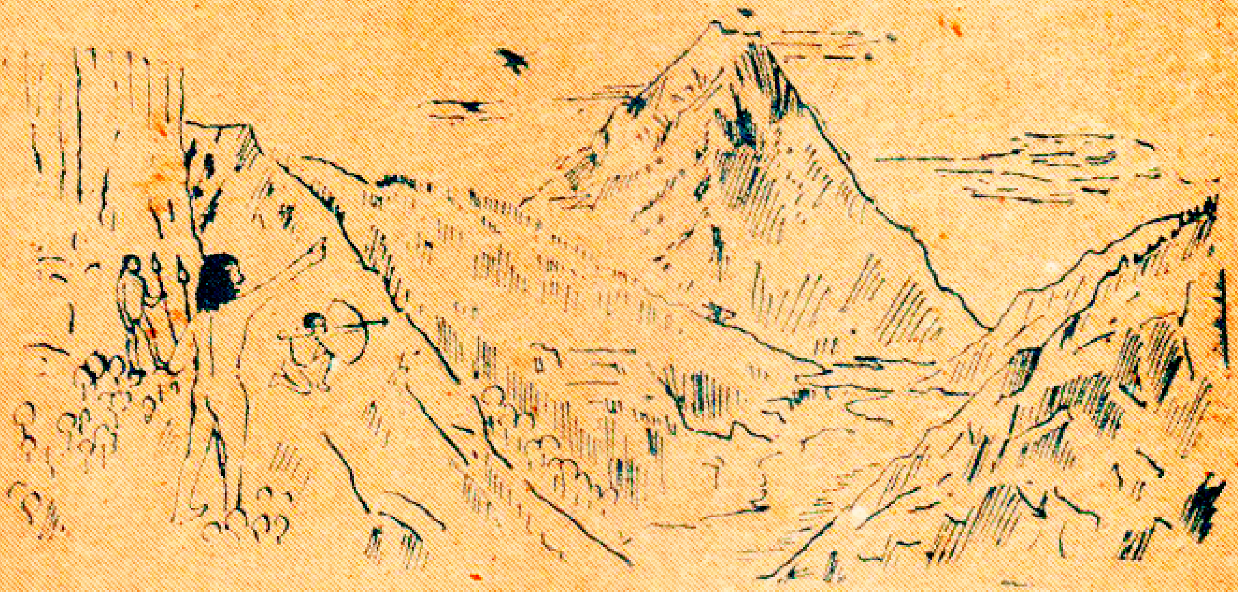
कैसे जायें? क्या क्या लायें?
होती थी कठिनाई,
इतने में ही किसी एक ने,
सूझ नई बतलाई।



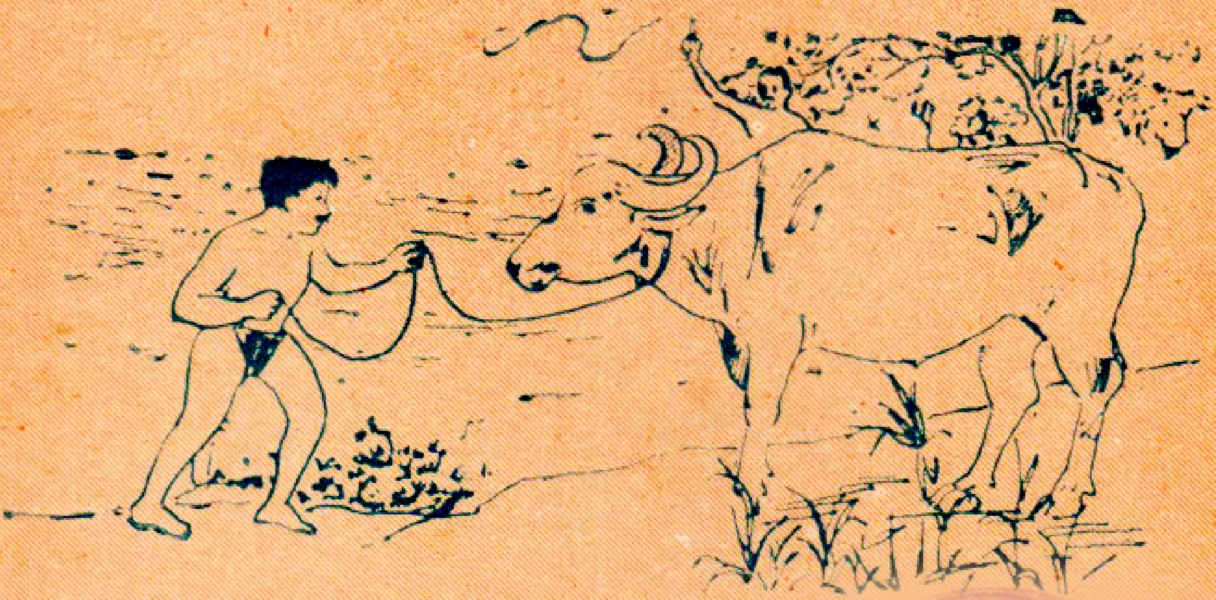
दो गोले पत्थर ले आया,
जाकर वही अकेला।
ऊपर से दो बाँसों को रख,
बना लिया एक ठेला।



घरघर - चरमर, चरमर - घरघर,
चलता था वह ठेला।
उसे देखने को उस दिन तो,
उमड़ पड़ा एक मेला।



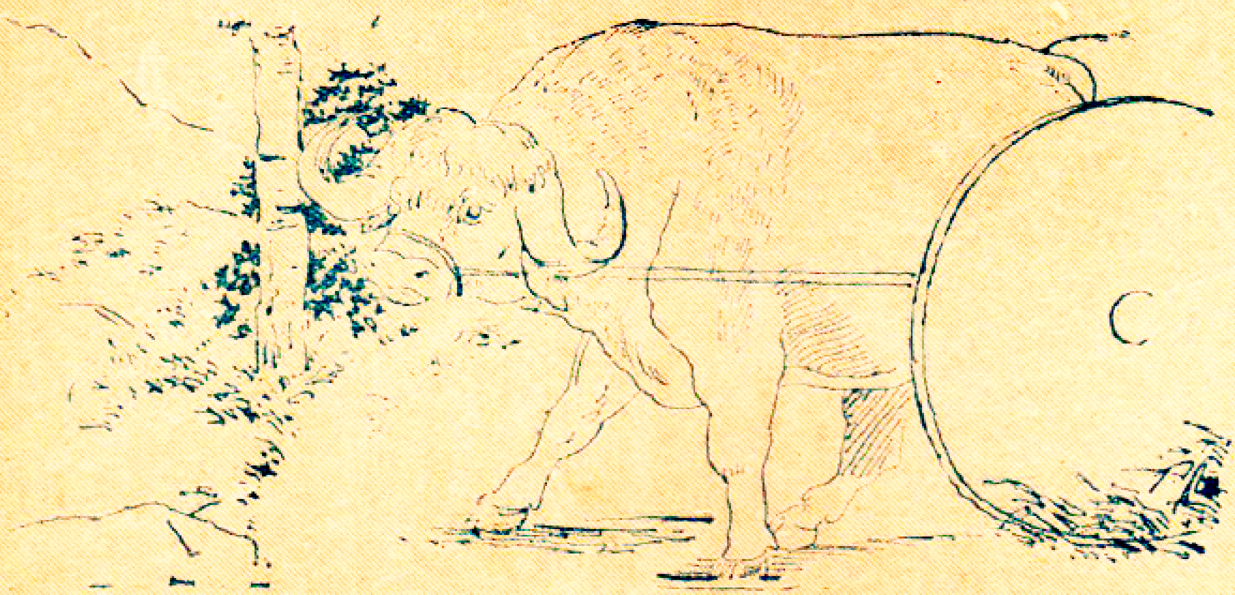
निकल पड़े कुछ लोग एक दिन,
करने चले शिकार।
मिल जायें कुछ भैंसे, घोड़े,
हिरन, ऊँट, लें मार।



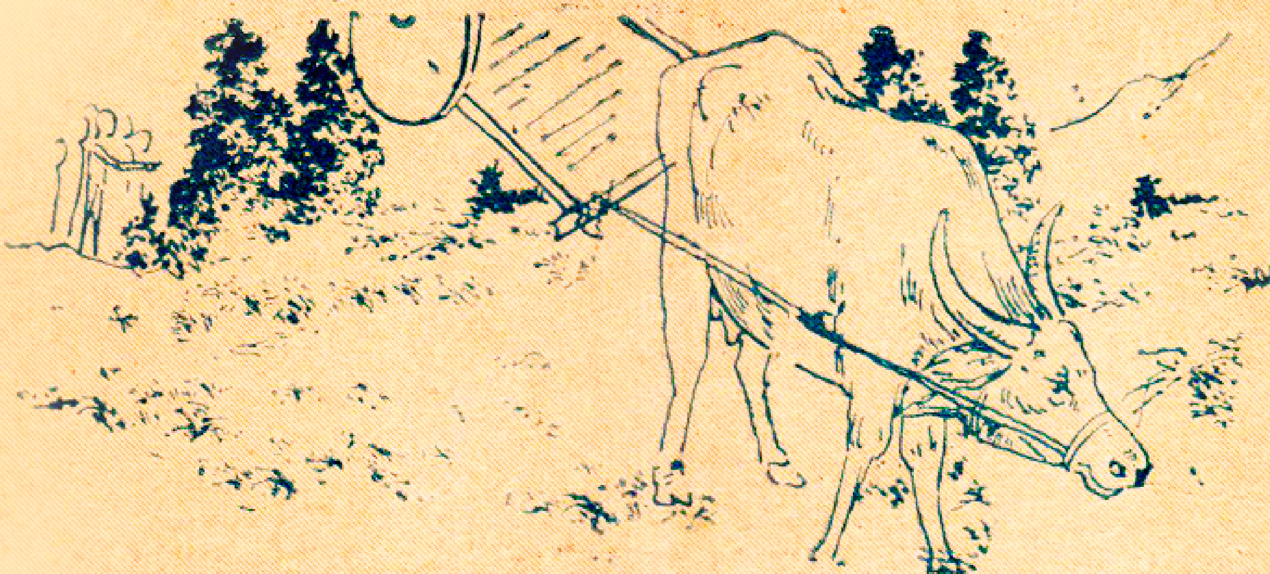
हाथ लगा उस दिन एक भैंसा,
उसको लाए घर।
घायल था वह थोड़ा-थोड़ा,
चलते करता देर।



गोले पत्थर के पहियों के,
बीच उसे बैठाया।
भाग न जाय कहीं और वह,
इसका जतन कराया।



सुस्ताता वह रहा रात भर,
जब हो गया सवेरा।
साथ - साथ ठेला घसीटता,
लगा लगाने फेरा।



इसे देख कर सब लोगों को,
हुआ अचम्भा भारी,
भैंसा ठेला खींच रहा था,
अच्छी मिली सवारी।

— बोस —

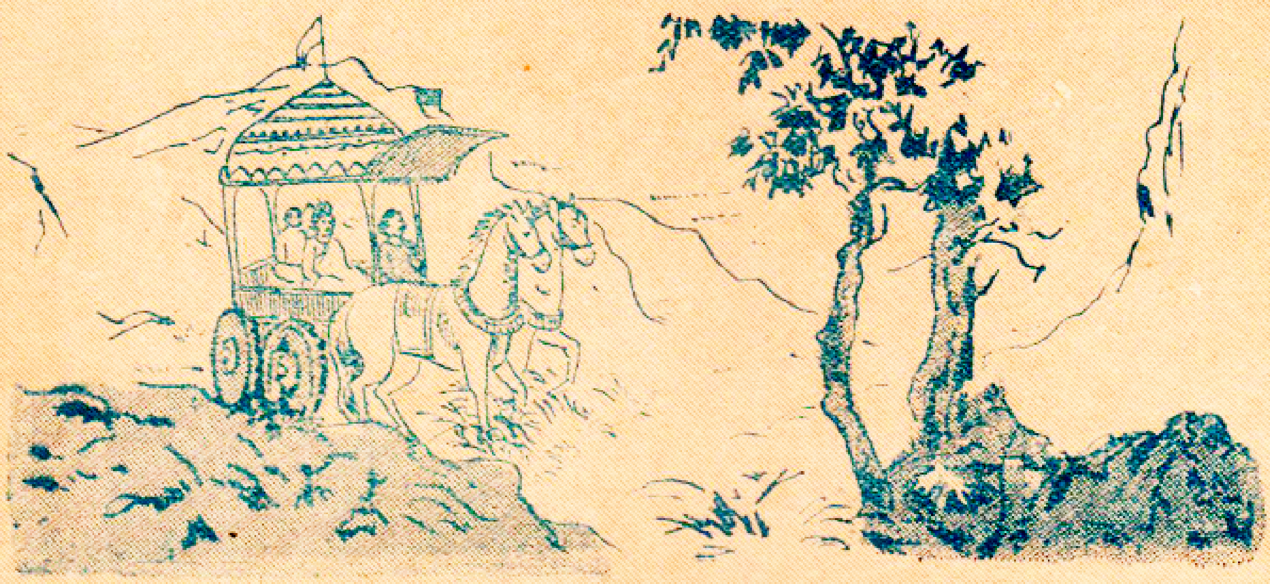


बरस हजारों बीत चुके हैं,
पर भैंसा बेचारा,
अब भी ठेला ढोता जाता,
नहीं कहीं है चारा।

— इक्कीस —

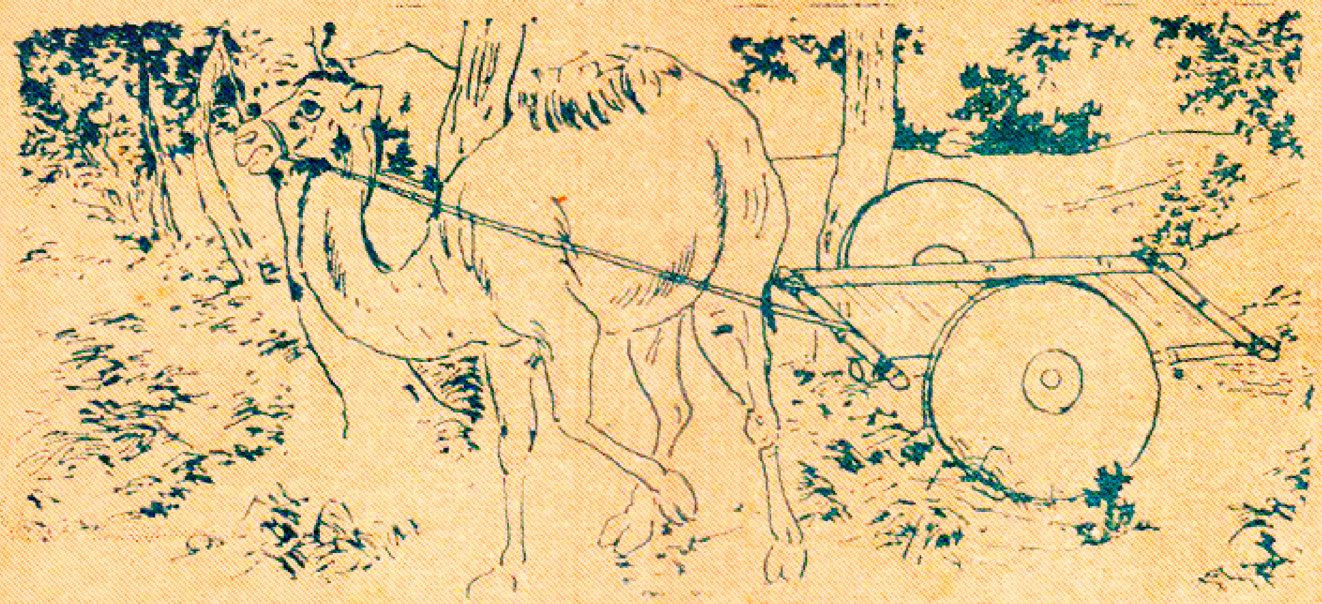


लकड़ी के पहिए अब बनते,
होते हलके-फुलके,
वही बैल या भैंसा-गाड़ी,
चरमर करती ढुलकें।

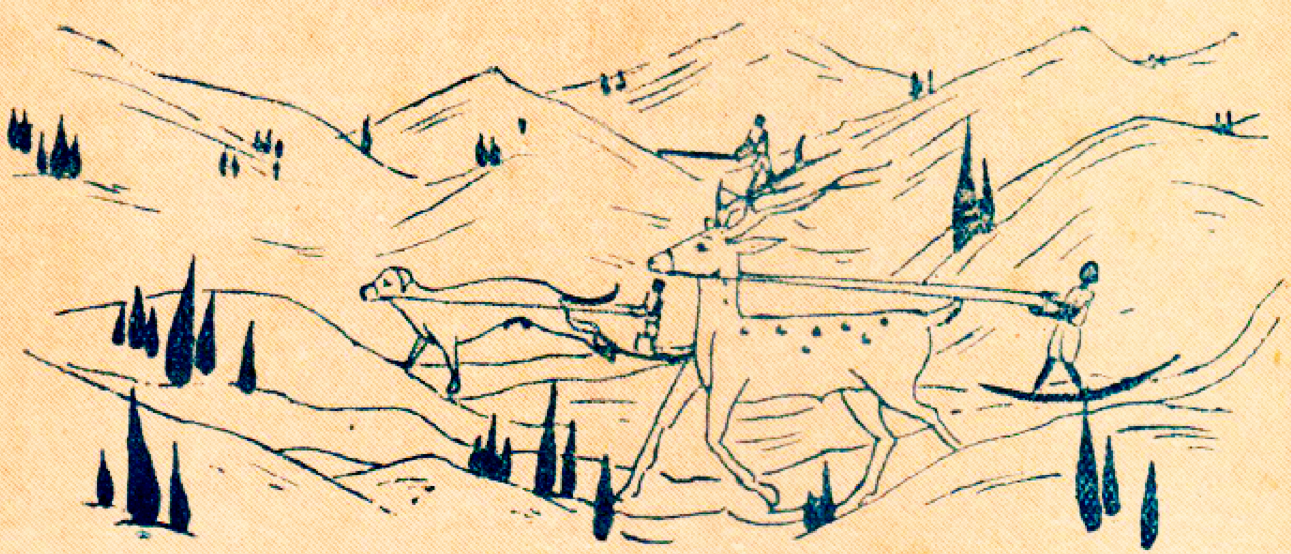


तब फिर रथ की बारी आई,
जिस पर राजे चढ़ते,
घोड़े उसमें जोते जाते,
फरवट सरपट चलते।

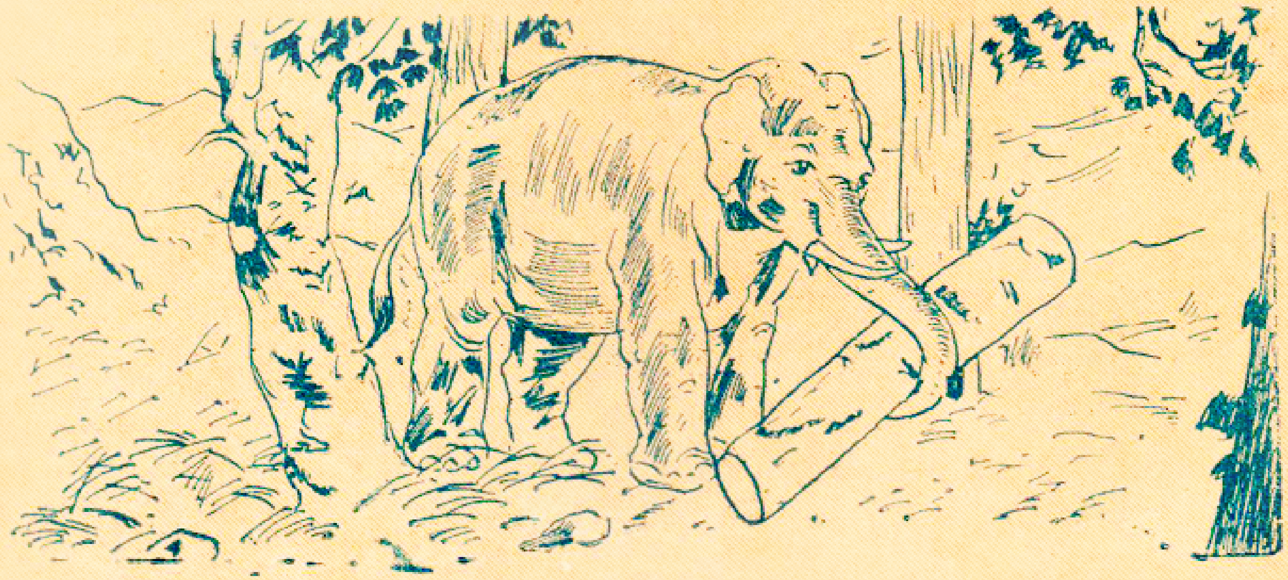
— तेंडस —



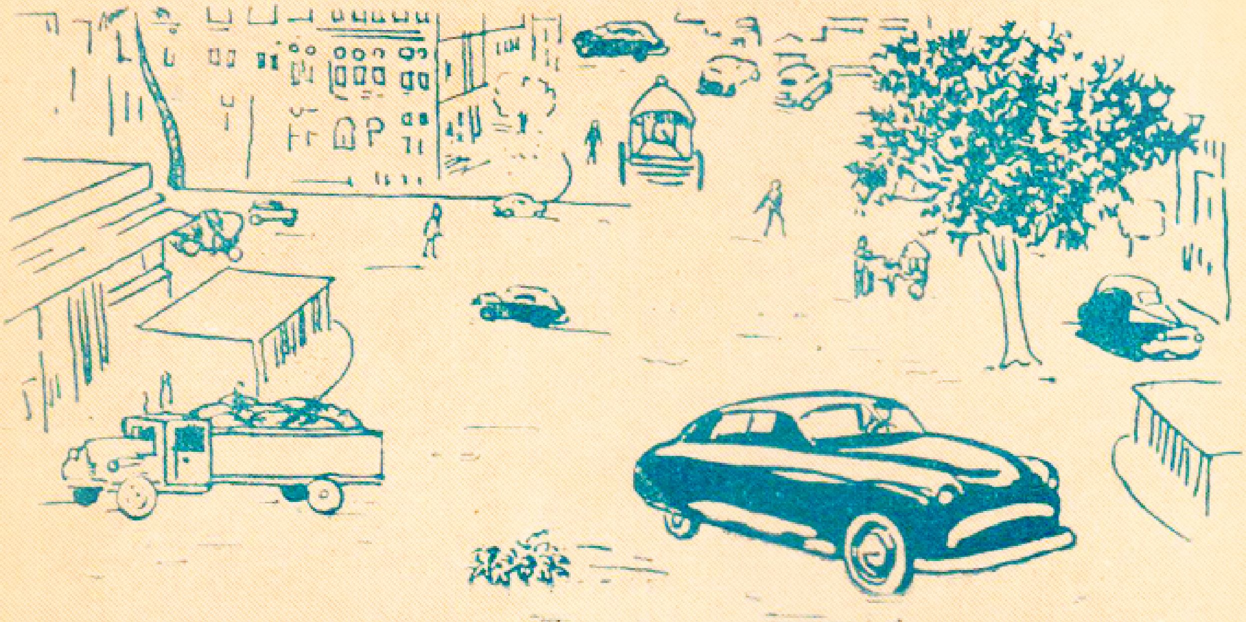
ऊँट कहीं पर खींचे देखो,
ऊँची - ऊँची गाड़ी,
कहते इन्हें ऊँट - गाड़ी हैं,
चलें कुचलती झाड़ी।



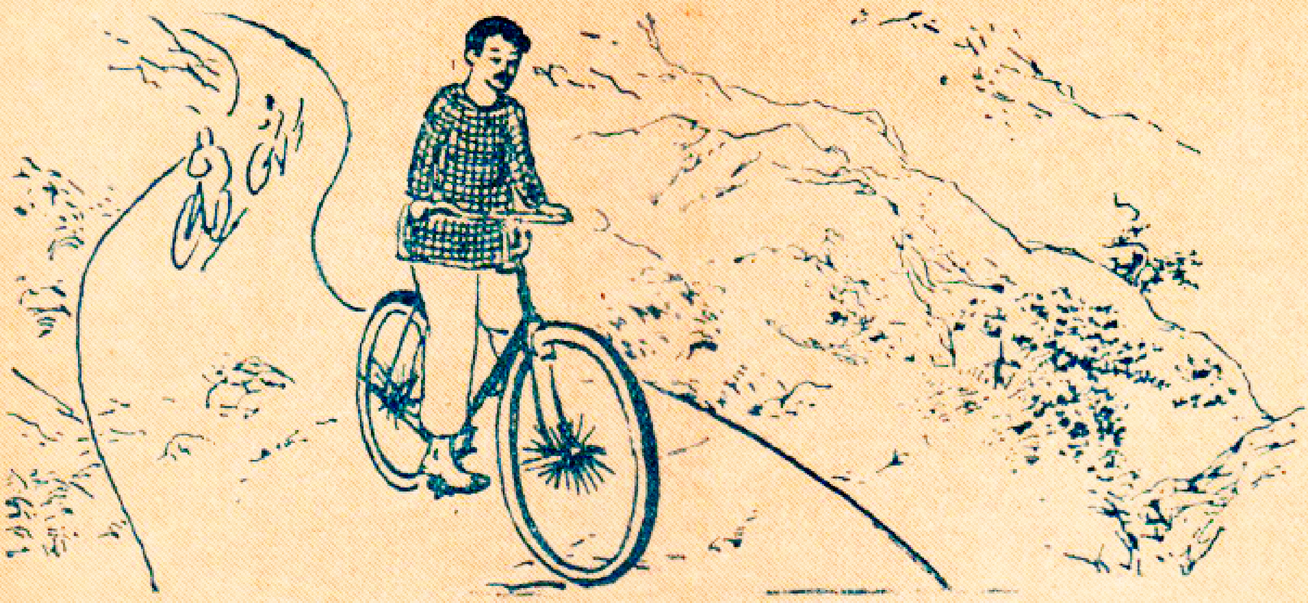
वर्फ़ीली जगहों पर बारह-
सिंहे जोते जाते,
झबरे झबरे मोटे कुत्ते,
इसी काम हैं आते।



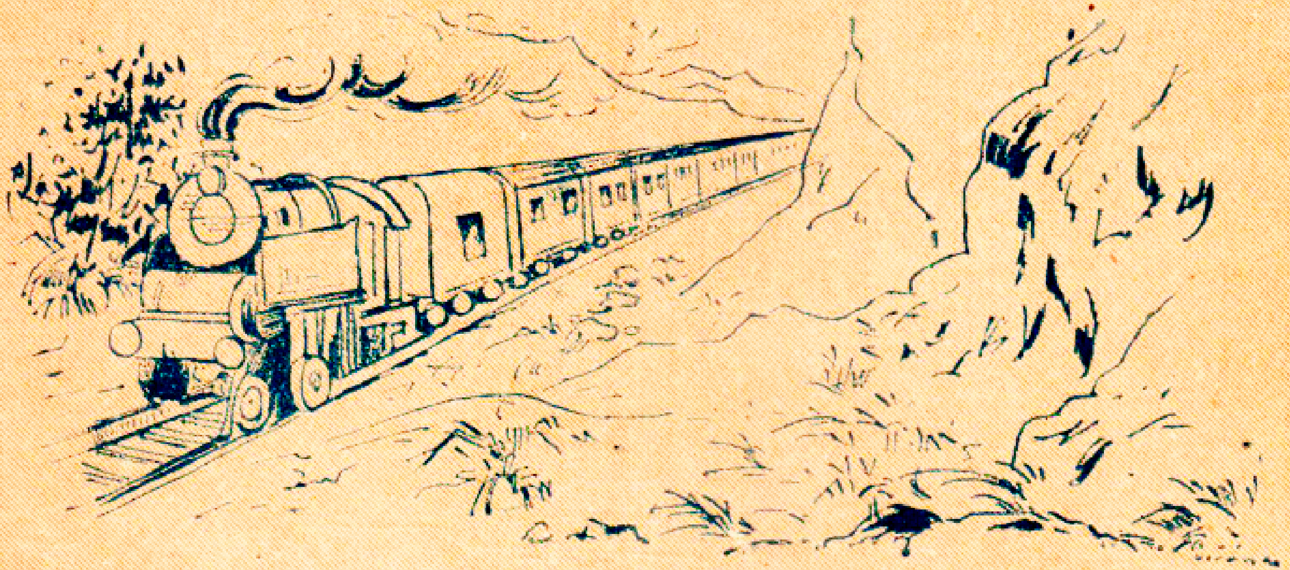
छोटी गाड़ी शुतुरमुर्ग है,
कहीं खींचता जाता,
हाथी भारी बोझ खींचता,
दिखलाई दे जाता।



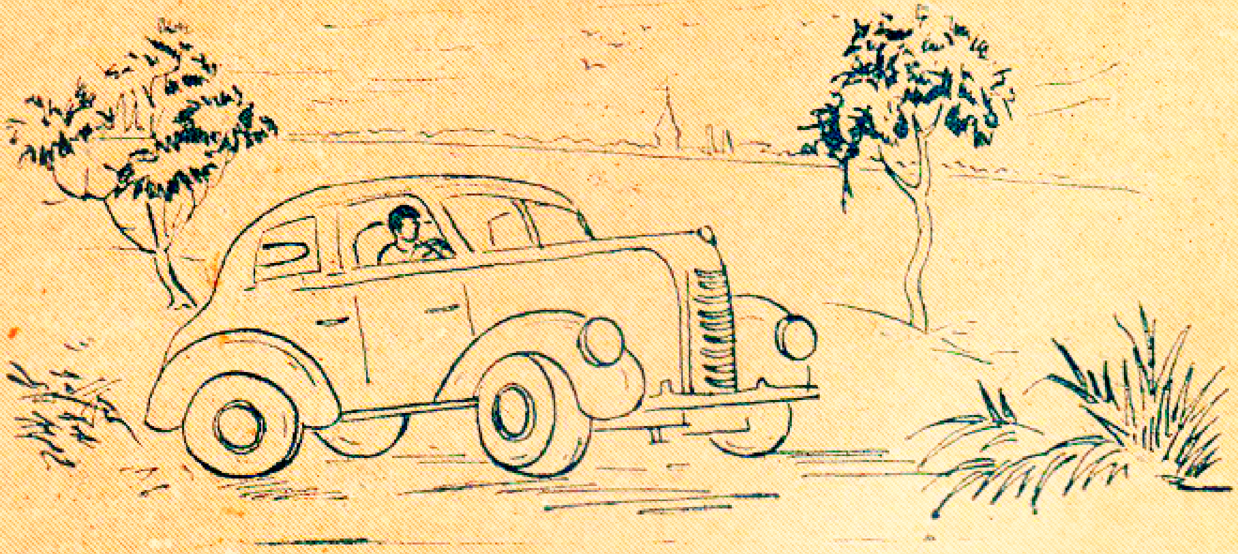
शहरों में दिखलाई देते,
इक्के, टमटम, ताँगे,
इधर उधर पहुँचाते हमको,
ले पैसे मुँह माँगे।



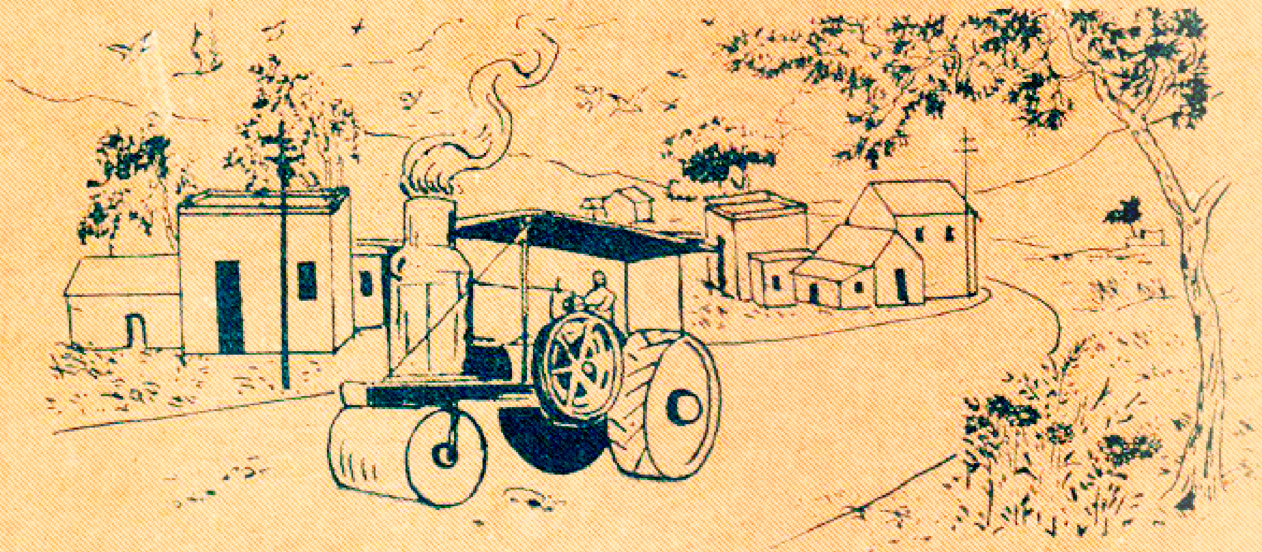
लगा रबड़ का पहिया देखो !
चले साइकिल मेरी,
फरफर - फरफर चलती जाती
कहीं न लगती देरी।



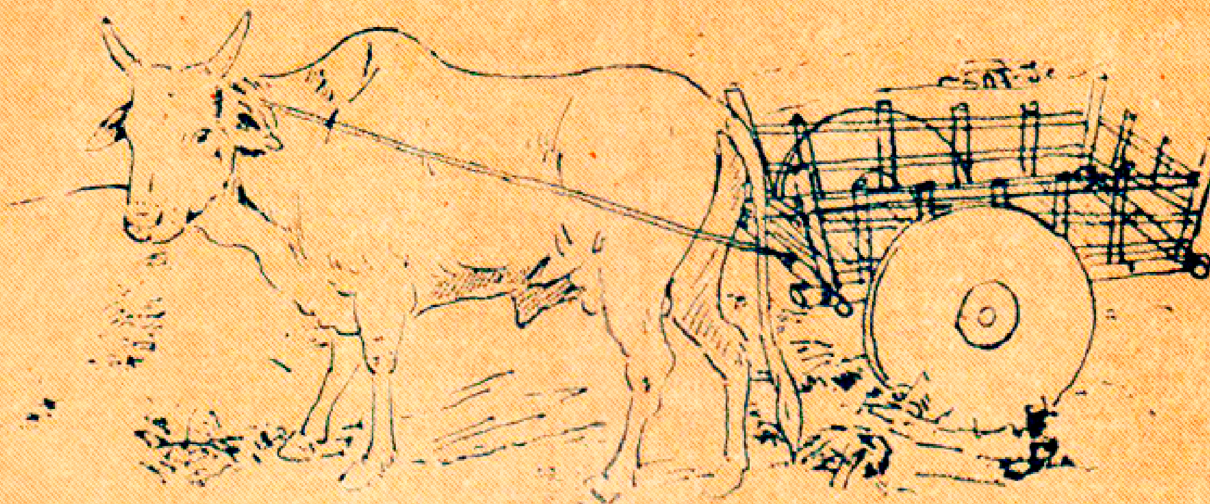
इस पहिये के ही करतब से,
रेलें दौड़ लगातीं,
धड़धड़ करतीं पटरी ऊपर
दूर देश ले जातीं।



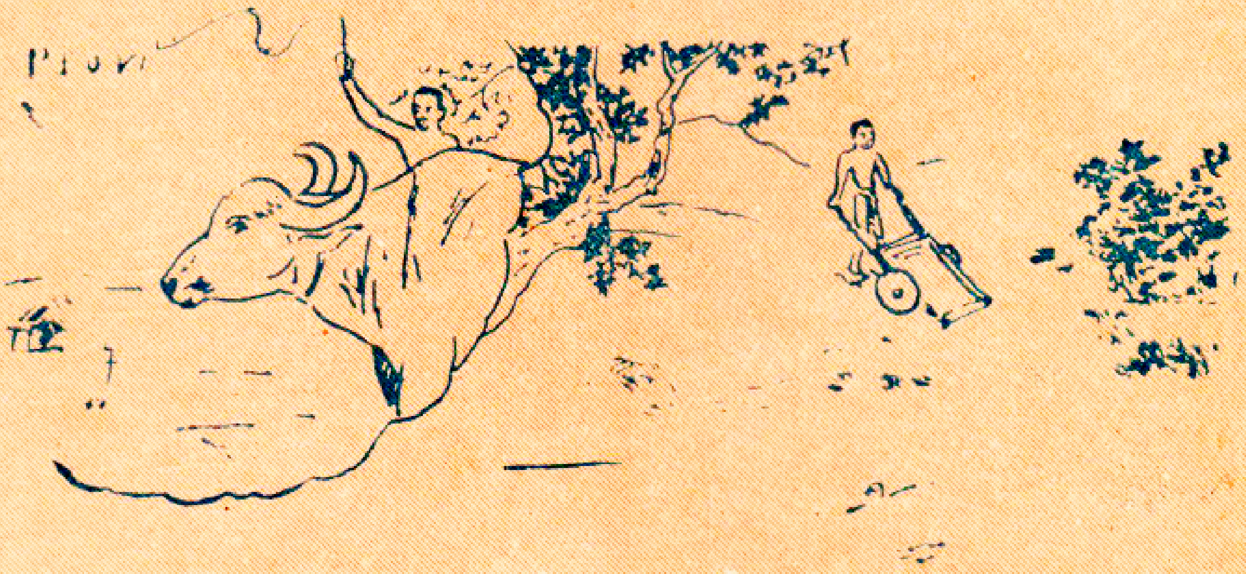
मोटर की क्या हालत होती,
अगर न पहिये होते,
फर्राटे मे कैसे चलती?
समय बहुत हम खोते ।



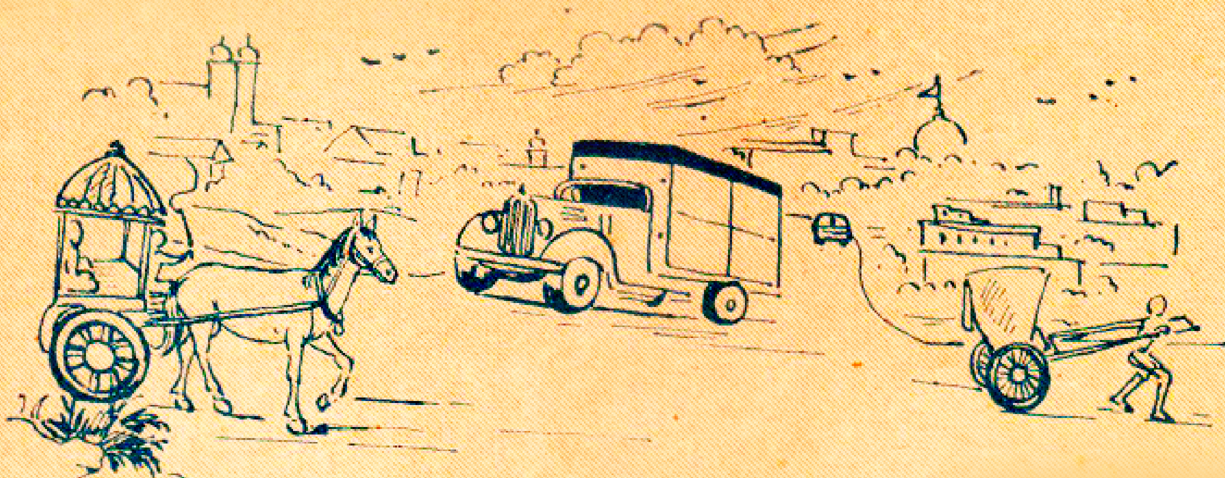
लोहे के पहिये के बल पर,
'बे ल ट' शो र म चा ता,
ऊबड़ - खाबड़ सड़कों को वह,
स म त ल क र ता जा ता ।



पर गाँवों में काम चलाती,
है बहली बेचारी,
छोटे - मोटे बैल खींचते
अद्धे सिकरम भारी।



अगर नहीं भैंसा बेचारा,
उ स दि न प क ड़ा जा ता,
और नहीं पत्थर के पहियों
को, यों ही घि स ला ता।



तो क्या कभी दिखाई देते,
इ क्के मो ट र ताँ गे,
इधर उधर हम को पहुँचाते,
ले पै से मुँ ह माँ गे

